# अनेकान्त दर्शन

☐ प्रा० उ० भा० कोठारी
(प्रमुख, हिन्दी विभाग, प्रताप महाविद्यालय, अमलनेर (महाराष्ट्र)

जेण विणा वि लोगस्स, ववहारो सव्वहा न निव्वउई ।
तस्स भुवणेक गुरुणो, णमो अणेगंतवायस्स ।।

—आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ।

अनेकान्त संसार का गुरु कहलाने योग्य है । इसके बिना इस दुनिया के व्यवहारों का निपटारा समुचित ढंग से नहीं हो सकता। इसलिए आचार्य सिद्धसेन दिवाकर उसे नमस्कार करते हैं ।

अनेकान्त का सिद्धान्त दार्शनिक जगत को जैनदर्शन की मौलिक देन है । यह जैन चिन्तकों की विलक्षण सूझ है । वास्तविकतः यह सिद्धान्त विश्वमंगलकारक है, किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि उसे एक सम्प्रदाय की छाप लगाकर अलग रख दिया जाता है ।

जैनागमों में उल्लेख है कि भगवान महावीर के समय ३६३ मत प्रचलित थे । भगवान के समकालीन सात व्यक्ति तो ऐसे थे कि वे स्वयं को तीर्थ का प्रवर्तक बतलाते थे । ऐसे अनेक मतवादों के कोलाहल में लोगों की बुद्धि कुण्ठित थी । वे जानना चाहते थे कि सत्य कहाँ और किस रूप में उपस्थित है । प्रत्येक प्रचारक दूसरों के मत के खण्डन में ही अपना बड़प्पन मान रहा था । ऐसे मतवादों के कोलाहल में भगवान महावीर जैनदर्शन का यह मौलिक और समन्वयस्वरूप सिद्धान्त समझाने लगे । यह वही सिद्धान्त है जिसको अनेकान्त या स्याद्वाद के नाम से जाना जाता है ।

जैनदर्शन के अनुसार इस विश्व की प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक है । रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि का विचार करते हुए दस पाँच गुण-धर्मों को तो हम सहज ही देख सकते हैं । इनके अलावा कितने ही ऐसे हैं जो सूक्ष्म रूप में हैं या गहराई में छुपे हैं । इतना ही नहीं एक अपेक्षा से कुछ गुण-धर्मों का आकलन होता है तो इससे भिन्न दूसरी अपेक्षा से भिन्न गुण समूह सामने आता है ।

इतना ही नहीं वस्तु में परस्पर विरोधी गुण-धर्म भी हमें दिखलाई देते हैं । जैसे जो आम कच्चा है वह हरा है और खट्टा है, लेकिन चार दिनों बाद वह सुन्दर केसरिया रंग का और स्वाद में मधुर हो जायगा । यह रंग और यह मधुरता ऊपर से किसी ने सींची नहीं है । ये दोनों गुण-धर्म उसी में अंतर्भूत थे । कालान्तर से प्रगट हो गये । हम भी शरीर की अपेक्षा से अनित्य और जीव की दृष्टि से नित्य हैं । या और एक उदाहरण लीजिए—स्वामी दयानन्द सरस्वती से एक बार पूछा गया कि 'आप विद्वान हैं या अविद्वान' तो स्वामीजी ने उत्तर दिया था—'दार्शनिक क्षेत्र में विद्वान तथा व्यापारिक क्षेत्र में अविद्वान ।' इससे सिद्ध है कि एक ही वस्तु में परस्पर विरोधी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिन्न गुण-धर्मों का होना असम्भव बात नहीं है। बल्कि वस्तु में ऐसे परस्पर विरोधी गुण-धर्म भी अनन्त गुण-धर्मों में होते हैं। साथ-साथ यह भी समझ लेना चाहिए कि एक नये विरोधी धर्म के प्रगट होने से पूर्वोक्त धर्म झूठा सिद्ध नहीं हो जाता। इस प्रकार की अनंत धर्मात्मकता के कारण ही तो सम्बन्धित सिद्धान्त नामारोपित है अनेकान्त अर्थात् अनेक अन्तवाला।

अनेकान्तवादी दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्येक वस्तु नित्यानित्य है, क्योंकि वस्तु द्रव्य और पर्याय का सम्मिलित रूप है। पर्यायों के अभाव में द्रव्य का और द्रव्य के अभाव में पर्यायों का कोई अस्तित्व संभव नहीं और ऐसी यह वस्तु द्रव्य की अपेक्षा से नित्य और पर्याय की अपेक्षा से अनित्य है। यह नित्यानित्य वस्तु 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य' के नियम से बँधी हैं। क्योंकि यह सारा विश्व शाश्वत है, अनादि है। अनन्त काल से इसका अस्तित्व है। इसका कभी भी कुछ भी पूर्ण नष्ट नहीं होता। हर वस्तु का सत् ध्रुव है। हम देखते हैं कि नयी वस्तु बनी, पुरानी नष्ट हुई। यह परिवर्तन सत् का नहीं पर्याय का है। एक पर्याय का व्यय, दूसरी पर्याय का उत्पाद हुआ। सोने के कंगन गलाये, हार बना लिया, सुवर्णत्व वैसा ही है। पर्याय बदली। कंगन व्यय हुए, हार का उत्पाद हुआ।

अनन्त धर्मात्मक वस्तु का विचार सापेक्ष दृष्टि से ही करना इष्ट है—आवश्यक है। इस दुनिया में ऐसा कुछ नहीं है जो सापेक्षता से बँधा नहीं है। एक विद्वान किसी एक क्षेत्र में तज्ञ तो किसी दूसरे क्षेत्र में अज्ञ होता है। एक छात्र अपने विद्यालय में पहला, लेकिन उस परीक्षा केन्द्र में पाँचवाँ होगा तो वही जिले में पच्चीसवाँ होगा। एक मनुष्य ने एक घर दिन में देखा। उसकी दीवारें सफेद थीं। दूसरे ने उस घर को रात को देखा। उस घर में हरा बल्ब लगा था। वह दूसरा कहने लगा उस घर की दीवारें हरी हैं। रात और दिन के सापेक्ष काल में दोनों का कथन सही था।

भिन्न अपेक्षा से भिन्न धर्मों को अभिव्यक्त करने वाली अनन्त धर्मात्मक वस्तु के स्वरूप का निर्णय करने के लिए जैन शास्त्रज्ञों ने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ऐसे चार आधार माने हैं। इनको चतुष्टय कहते हैं। वस्तु का निरीक्षण-परीक्षण करते समय इन चतुष्टयों के सन्दर्भ में वस्तु को देखना होता है। प्रत्येक वस्तु स्व-द्रव्य, स्व-क्षेत्र, स्व-काल और स्व-भाव से सत्य है। पर-द्रव्य, पर-क्षेत्र, पर-काल और पर-भाव से असत्य है।

जैसे एक महोदय पेन्सिल से लिख रहे हैं। पेन्सिल का ग्राफाइट द्रव्य, लिखने वाले की उँगलियाँ पेन्सिल का क्षेत्र, दोपहर के तीन बजे का समय पेन्सिल का काल और लिखने के लिए पेन्सिल अच्छी है यह पेन्सिल का भाव है। महोदय ने कहा—'पेन्सिल है।' तो पास में बैठी उनकी लड़की कहती है—'पेन्सिल नहीं है।' महोदय के हाथ में पेन्सिल है, लड़की के हाथ में नहीं है। महोदय कहते हैं—'(लिखने के लिए) पेन्सिल अच्छी है।' लड़की कहती है—'(चित्रकारी के लिए) पेन्सिल अच्छी नहीं है।' सवा तीन बज गये। महोदय चाय पीने के लिए भीतर चले गये। अब टेबिल पर पेन्सिल है। भीतर पेन्सिल नहीं है। तीन बजे पेन्सिल उनके हाथ में थी, अब सवा तीन बजे पेन्सिल उनके हाथ में नहीं है। इस प्रकार भिन्न अपेक्षाओं से भिन्न गुणधर्म सामने आते हैं। वस्तु के अनन्त धर्मों का विचार सापेक्ष ढंग से करना ही स्याद्वाद है। स्याद्वाद में दो पक्ष हैं—स्यात् और वाद। 'स्यात्' एक अव्यय है जो कथंचित्, किसी अपेक्षा से, अमुक दृष्टि से इस अर्थ का द्योतक है और 'वाद' मतलब सिद्धान्त, मत या प्रतिपादन। इस प्रकार 'स्याद्वाद' पद का अर्थ हुआ सापेक्ष-सिद्धान्त, अपेक्षावाद, कथंचित्वाद या वह सिद्धान्त जो विविध दृष्टि बिन्दुओं से वस्तु-तत्त्व का निरीक्षण-परीक्षण करता है।

साधारणतः स्याद्वाद को अनेकान्त कह दिया जाता है। लेकिन दोनों में प्रतिपाद्य, प्रति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पादक सम्बन्ध है। अनेकान्तात्मक वस्तु का जाँच-पड़ताल के आधार पर जो स्वरूप सामने आवे उसको भाषा द्वारा प्रतिपादित करने वाला सिद्धान्त स्याद्वाद कहलाता है।

स्याद्वाद पद्धति से संसार की किसी भी वस्तु के स्वरूप कथन में सात प्रकार के वचनों का प्रयोग किया जाता है। यही सप्तभंगी है। ये वचन सात ही प्रकार के हो सकते हैं। (१) अस्तित्व है। (२) अस्तित्व नहीं है। (३) अस्तित्व अवक्तव्यम् है। ऐसे तीन मूल वचन अस्तित्व के सन्दर्भ में होंगे। गणित-शास्त्र के अनुसार भी तीन मूल वचनों के संयोगी असंयोगी और अपुनरुक्त ये सात ही भंग हो सकते हैं, अधिक हो हो नहीं सकते। माना कि कोई सेठ तीर्थयात्रा करने गये हैं। उन्हें दूर के किसी स्थान पर अपने शहर का आदमी मिला। उसने खबर दी कि आजकल हमारे प्रदेश में चोरियाँ बहुत हो रही हैं। सेठ विचार करने लगेंगे—

१. क्या मेरे मकान में चोरी हुई होगी ?
२. क्या न हुई होगी ?
३. चोरी हुई होगी या न हुई होगी ?
४. निश्चित क्या कह सकते हैं ?
५. हुई होगी। निश्चित क्या कह सकते हैं ?
६. न हुई होगी। निश्चित क्या कह सकते हैं ?
७. हुई होगी या न हुई होगी। निश्चित क्या कह सकते हैं ?

इस प्रकार के सात प्रश्न और उनके सात उत्तर उस सेठ के मन में आयेंगे। किसी वस्तु के सम्बन्ध में उसके अस्तित्व विषयक जाँच-पड़ताल को गृहीत मानकर अपेक्षा-भाव सूचक 'स्यात्' तथा निश्चितता का सूचक 'एव' जोड़कर सप्तभंगी का शास्त्रीय ढंग का ढाँचा इस प्रकार बनेगा—

१. स्यादस्त्येव।
२. स्यान्नस्त्येव।
३. स्यादस्तिनास्तिचैव।
४. स्यादवक्तव्य एव।
५. स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यश्चैव।
६. स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यश्चैव।
७. स्यादस्तिनास्ति अवक्तव्यश्चैव।

सप्तभंगी द्वारा जाँच-पड़ताल करने के बाद जो निर्णय आते हैं वे स्पष्ट, निश्चित और स्वतन्त्र होते हैं और वस्तु में प्रत्येक धर्म की संगति एकदम निर्विवाद हो जाती है।

सप्तभंगी के अलावा वस्तु के सात अलग-अलग या भिन्न स्वरूपों को समझने के लिए जैन न्याय में 'नय' की योजना की गयी है। ये नय भी सात हैं। प्रथम तीन द्रव्यार्थिक नय और शेष चार पर्यायार्थिक नय हैं। द्रव्यार्थिक नय द्रव्य के सामान्य-विशेष, सामान्य तथा विशेष धर्मों का प्रतिपादन करते हैं। पर्यायार्थिक नय पर्याय की वर्तमान अवस्था, लिंग, वचन काल आदि व्याकरण भेद के आधार पर शब्दों के ठीक अर्थ का प्रतिपादन करना, शब्द भेदों के आधार पर ठीक अर्थ का प्रतिपादन करना तथा क्रियाभेदार्थक प्रतिपादन करना आदि कार्य करते हैं।

स्याद्वाद में निक्षेप का भी एक विशेष कार्य है। निक्षेप चार हैं। निक्षेप का कार्य है स्वरूप कथन में प्रयुक्त शब्दों के अर्थों की ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त करना। निक्षेप जानकारी देते हैं कि अमुक शब्द अमुक अर्थ से नाम है, अमुक अर्थ से आकृति है, अमुक अर्थ से द्रव्य है एवं अमुक अर्थ से भाव है। निक्षेप से प्रयुक्त शब्दों के अर्थ में स्पष्टता आ जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी द्रव्य या जीव के सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल करके निर्णय करने का जब प्रसंग आता है तो ध्यान में रखना चाहिए कि प्रारम्भ में हमें जो जैसा दीखता है, वैसा नहीं होता। हर एक के भिन्न-भिन्न पक्ष ध्यान में लेकर निर्णय करना आवश्यक है। इसलिए नय और निक्षेप अत्यन्त उपयुक्त हैं।

इस प्रकार हमें स्पष्ट होगा कि प्रमाण, चतुष्टय, नय, निक्षेप, सप्तभंगी आदि शास्त्रीय पद्धतियों द्वारा अनन्त धर्मात्मक वस्तु का स्वरूप समझने के लिए स्याद्वाद यह एक उपयोगी वाद है। सर्वोपरि जैन न्याय है। वह संशयवाद नहीं है। वह एक ही समय अस्तित्व नास्तित्व कहता हैं। लेकिन यह कथन स्व-चतुष्टय और पर-चतुष्टय की सापेक्ष दृष्टि से होता है। संशय को इसमें कतई स्थान नहीं है। वह एक सत्यवाद है। समन्वयवाद है।

स्याद्वाद वस्तु के विविध पक्षों पर ध्यान देता है। सापेक्ष विचार करता है। हमें एकांगी विचार से बचाता है। वह समस्त दार्शनिक समस्याओं, उलझनों और भ्रमणाओं के निवारण का समाधान प्रस्तुत करता है।

स्याद्वाद हठाग्रही नहीं है। पर-मतसहिष्णुता सीखने का वह सर्वश्रेष्ठ मंत्र है। यह मंत्र 'ही' का नहीं 'भी' का प्रयोग करने को कहता है। उसका कहना है कि यह मत कहो कि 'यह ही सत्य है।' कहो कि 'वह सत्य होगा साथ-साथ यह भी सत्य है।' जो अपने मत के प्रति अथवा एकान्त के प्रति आग्रहशील है, दूसरे के सत्यांश को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं वह तत्त्व रूपी नवनीत पा नहीं सकता। भ० महावीर ने सूत्रकृतांग में कहा है—

सयं सयं पसंसंता परहंता परं वयं।
जेउ तत्थ विउस्सन्ति संसारे विउस्सिया॥

—जो अपने मन की प्रशंसा और दूसरे के मत की निन्दा करने में ही अपना पांडित्य दिखाते हैं, वे एकान्तवादी संसार चक्र में भटकते ही रहते हैं।

यह उक्ति बिलकुल सत्य है। क्योंकि आग्रह राग है और जहाँ राग है वहाँ न आत्मशुद्धि सम्भव है न सम्पूर्ण सत्य का दर्शन।

और सत्य कभी मेरा या तेरा नहीं होता। अगर सत्य को पाना है तो आग्रह या मतवादों से ऊपर उठना जरूरी है। यही स्याद्वाद का मुख्य सन्देश है।

निश्चित ही स्याद्वाद या अनेकान्त एक नयी विशाल प्रेममरी दृष्टि देने वाला एक सर्वोपरि मंत्र है। किसी ने ठीक ही कहा है—"विश्व शान्ति की स्थापना के लिए जैनों को अहिंसा की अपेक्षा स्याद्वाद सिद्धान्त का अत्यधिक प्रचार करना उचित है।" इस कथन में काफी वजन है। क्योंकि जहाँ सही-सही अनेकान्त दृष्टि आ जाती है, वहाँ अहिंसा अपने आप जीवन में उतर ही आती है। □

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org